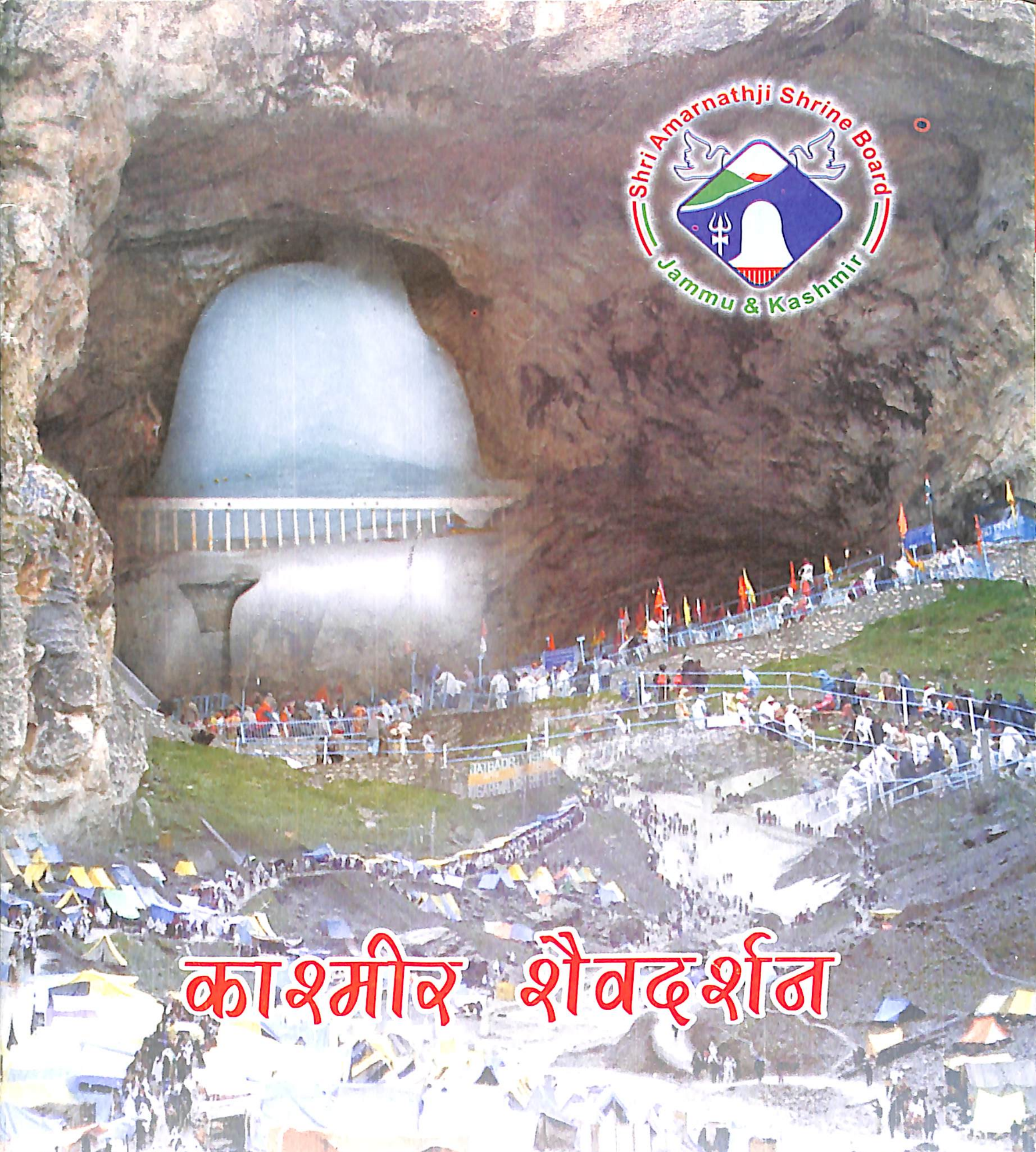


काश्मीर शैवदर्शन

Published by :
Shri Amarnathji Shrine Board
Jammu & Kashmir

Route Map From Baltal to Holy Cave



राज्यपाल
जम्मू व कश्मीर



सन्देश

कश्मीर के अद्वैत शैवदर्शन की कुछ अपनी विशेषताएं हैं जिन के कारण विश्व के बहुत से देशों में इस दर्शन के प्रति अभिरूचि बढी है। अनेकता में एकता की भावना और एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण ने कश्मीर के शैवदर्शन और सूफीदर्शन को परस्पर निकट लाकर एक सांझी संस्कृति को जन्म दिया है। श्री अमरनाथ तीर्थ की यात्रा पर आने वाले शिवभक्त जो इस भूमि में पल्लवित शैवदर्शन के बारे में सक्षेंप में जानना चाहते हैं, उन के लिए प्रो वेदकुमारी घई द्वारा तैयार की गई यह पुस्तक लाभप्रद होगी।

एन. एन. वोहरा
माननीय राज्यपाल
जम्मू व कश्मीर

भूमिका

यह छोटी सी पुस्तक उन शिवभक्तों और जिज्ञासुओं के लिए लिखी गई है जो काश्मीर शैवदर्शन के बारे में संक्षेप से जानना चाहते हैं । प्राचीन भारत की चिन्तन परम्परा में अनेक दार्शनिक परम्परायें पनपती रही हैं । सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी, समुद्र आदि यह सारी सृष्टि अनादि है या इसे किसी परमसत्ता ने बनाया है ? इस सृष्टि का नियन्त्रण कोई शक्ति कर रही है या यह स्वयं ही चल रही है? जीवन की शुरूआत क्यों और कैसे हुई? मानव जीवन का उद्देश्य क्या है ? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के उत्तर खोजने का यत्न प्राचीन भारत के विद्वानों ने किया है जिस के परिणाम स्वरूप यहां न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त ये छः आस्तिक दर्शन तथा इनके अतिरिक्त बौद्ध, जैन, चार्वाक आदि कई दर्शन विकसित हुए हैं । कश्मीर का पराद्वैत शैवदर्शन भी इसी चिन्तन परम्परा की एक कड़ी है । इसे प्रत्यमिज्ञादर्शन, त्रिकदर्शन तथा काश्मीर शैवदर्शन कहा गया है ।

इस दर्शन के अनुसार जड़ और चेतन सृष्टि का स्रोत एक ही परमसत्ता है जिसे परमशिव या परमेश्वर कहा गया है । वही शिव अपनी ही इच्छा से अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से लीला करता हुआ एक ओर तो शुद्ध प्रकाशरूप में ही विद्यमान रहता है जो इसका विश्वोत्तीर्ण विश्व से परे का स्वरूप है तो दूसरी ओर विमर्शरूप में अर्थात् क्रियारूप में विश्वमय रूप धारण करता है । जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र और जीव ये आठों शिव के शरीर कहे गये हैं । शिव की शक्ति शिव से वैसे ही अलग नहीं है जैसे अग्नि से गर्मी अलग नहीं होती । माया भी शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति का ही दूसरा रूप है। शिव इस माया शक्ति से तीन प्रकार के मलों (आणव, मायीय और कार्म) को उत्पन्न कर अपने पति रूप को भुला कर संसारी जीव का रूप धारण करता है जो आवागमन के चक्र में फंस कर नाना योनियों को प्राप्त करता है । जब वह शिवकृपा से, गुरु के उपदेश तथा शास्त्रों के अभ्यास से अपने असली रूप को पहचान लेता है तो पुनः शिवरूप हो जाता है। शिव तो सर्वज्ञ है सब कुछ जानता है, सर्वकर्ता है सब कुछ कर सकता है, पूर्ण है, नित्य है, सर्व व्यापक है, परन्तु शिवरूप को भुला कर जीवरूप में उसकी ये शक्तियाँ सीमित और संकुचित हो जाती है । वह जीव सब कुछ नहीं जान सकता । कुछ सीमा तक ही जान पाता है, सब कुछ नहीं कर सकता, वह अपूर्ण है, काल की और देश की सीमाओं से बंधा है, परन्तु फिर भी जहां तक उसका ज्ञान है वहां तक वह कर्म करने में स्वतन्त्र है और उस दायरे तक कर्तव्य कर्म करने का उसका

उत्तरदायित्व भी है । काश्मीर शैवदर्शन का यह सिद्धान्त व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकर है । अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही सत्य है । संसार मिथ्या है जिसकी प्रतीति माया या अज्ञान से होती है परन्तु काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार शिव भी सत्य है और शिव का ही रूप जगत् भी सत्य है। इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन निष्क्रियता की बात न करके आध्यात्मिक और सांसरिक दोनों क्षेत्रों में उन्नति करने की प्रेरणा देता है ।

काश्मीर शैवदर्शन की यह विशेषता है कि इस के अनुसार साधना का मार्ग सभी के लिए खुला है । इस में जातपात, ऊँच नीच, स्त्री पुरुष का कोई भेद भाव नहीं । साधक उत्तम गुरु का चयन कर चार उपायों में से अपने लिए उपयुक्त किसी उपाय को अपना कर साधना कर सकता है । साधारणस्तर के साधकों के लिए आणवोपाय या क्रियायोग है जिस में मन प्राण और इन्द्रियों की साधना की जाती है । उन से ऊँचे स्तर के साधक शाक्तोपाय या ज्ञानयोग का सहारा ले सकते हैं जिस में मन्त्रशक्ति का प्रयोग होता है । उन से उच्च स्तर के साधकों के लिए शाम्भवोपाय या इच्छायोग है जिसमें साधक स्वयं अपनी इच्छा के प्रयोग से ही वायुरहित प्रदेश में जलते हुए दीपक की ज्योति की तरह अचल स्थिति में अपने आप में स्व में ठहरने का अभ्यास करता है । कुछ ऐसे साधक भी होते हैं जो पूर्व जन्मों की साधना के परिणामस्वरूप उच्चतम स्तर पर पहुंचे होते हैं । वे गुरु द्वारा इतना बताने मात्र से ही कि तुम तो स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशमान हो, गुरु के अनुग्रह से शिवभाव को प्राप्त कर लेते हैं । इसे अनुपाय या आनन्दयोग कहते हैं । शिवभाव पाने के ये सभी उपाय योग हैं जिन्हें कोई भी साधक अपने सामर्थ्य अनुसार अपना सकता है । पतंजलि तो चित्तवृत्तियों के रोकने को योग कहते हैं पर कश्मीर के शैवाचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार योगी जबरदस्ती मन को विषयों से नहीं हटाता । वह इन्द्रियों का स्वभाव जान कर तटस्थ भाव से सांसारिक भोग भोगता है तथा लोक व्यवहार निभाता है । कल्याण संसार को मिथ्या मान कर उसे छोड़ने में नहीं अपितु समस्त जगत् को शिवमय मानते हुए कर्तव्य बुद्धि से कर्म करने में है। यही काश्मीर शैवदर्शन का सार है।

अन्त में मैं श्री अमरनाथ श्राइन बोर्ड के अध्यक्ष माननीय श्री एन. एन. वोहरा तथा बोर्ड के सदस्यों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हूं जिन की प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है। इसे सुन्दररूप में प्रकाशित करने के लिए बोर्ड के अधिकारियों का धन्यवाद करती हूं।

वेद कुमारी घई

कश्मीर में नवम शताब्दी में हुए शैवदर्शन के आचार्य सोमानन्द ने अपने ग्रन्थ शिवदृष्टि में शैवदर्शन के उद्गम का विवरण इस प्रकार दिया है ..

शैवदर्शन के रहस्य पूर्व–काल में महात्माओं के पास सुरक्षित थे। कलियुग के प्रारम्भ होने पर वे लोग सुदूर दुर्गम ग्रामों में चले गये तो शैवी विद्या लुप्तप्रायः हो गई। फिर कभी कैलाश पर्वत पर विचरण करते हुए मुनि दुर्वासा ने अपने शिष्य त्र्यम्बकादित्य को अद्वैत शैवदर्शन का ज्ञान दिया। इस प्रकार शिष्यों की चौदह पीढ़ियां बीत गईं। पन्द्रहवीं पीढ़ी के त्र्यम्बकादित्य के पुत्र संगमादित्य आठवीं शाताब्दी में कश्मीर में आये और वहाँ त्र्यम्बक मठिका की स्थापना की। इस मठिका में अनेक सिद्ध महापुरुष हुए जिन्हें शैव आगमशास्त्रों का साक्षात्कार हुआ। उन्हीं आगमशास्त्रों के आधार पर कश्मीर के आचार्यों ने काश्मीर शैवदर्शन का विकास किया।

शिवपूजा तो भारत के विभिन्न भागों में बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है। प्रागैतिहासिक सिन्धुघाटी की सभ्यता के अवशेषों से भी पशुपति शिव की पूजा के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। मोहंजोदड़ो से प्राप्त हुई तीन मुद्राओं पर पशुओं से घिरे हुए देव का अंकन है। पुरातत्त्व के विद्वान् उसे पशुपति शिव का आदि रूप मानते हैं। भारतदेश के विभिन्न भागों में शैवदर्शन के कई रूप उपलब्ध होते हैं जैसे तमिलप्रदेश में सिद्धान्त शैवदर्शन, आन्ध्रप्रदेश में पाशुपत शैवदर्शन, कर्णाटक में वीर शैवदर्शन तथा कश्मीर में पराद्वैत शैवदर्शन जिसे त्रिकदर्शन तथा प्रत्यभिज्ञादर्शन भी कहा जाता है।

काश्मीर शैवदर्शन का प्रारम्भ नवम शताब्दी ईस्वी माना गया है। कुछ विद्वान् इसे अद्वैत वेदान्तदर्शन का ही रूपान्तर मानते हैं परन्तु श्री लक्ष्मणजू महाराज तथा पण्डित बलजिन्नाथ आदि विद्वान् इस का विकास शैवागमों में

स्वतन्त्र रूप से हुआ मानते हैं। वर्तमान में उपलब्ध प्रमुख शैवागम ग्रन्थ हैं .... (1) मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, (2) स्वछन्दतन्त्र, (3) विज्ञानभैरव, (4) परात्रिंशिका तथा (5) शिवसूत्र। इन में शिवसूत्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। कहा जाता है कि शिवकृपा से ईसा की नवम शताब्दी में आचार्य वसुगुप्त को शिवसूत्रों की प्राप्ति हुई थी। इन सूत्रों में शिव की उपासना के रहस्यों तथा उपासना से प्राप्त होने वाले फलों की चर्चा है। इन की व्याख्या वसुगुप्त के शिष्य भट्ट कल्लट ने स्पन्दकारिका के रूप में पचास श्लोकों में की है। उन्हों ने स्वयं इस ग्रन्थ पर एक टीका स्पन्दसर्वस्व भी लिखी है। उनका एक अन्य संक्षिप्त ग्रन्थ शिवसूत्रवृत्ति भी है। भट्ट कल्लट कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा के समय में हुए थे अतः उनका समय 840 ई० के आसपास माना जा सकता है

आचार्य सोमानन्द का ग्रन्थ शिवदृष्टि शैवदर्शन का प्रथम दार्शनिक ग्रन्थ है। वह भट्ट कल्लट के पश्चात् 875 ई० के लगभग हुए। आचार्य सोमानन्द ने इस ग्रन्थ में काश्मीर शैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों का स्पष्ट वर्णन किया है। वैयाकरणों के शब्द विवर्त्तवाद की तथा वैदिक, बौद्ध, जैन, वैष्णव आदि अनेकों दर्शनों के सिद्धान्तों की उन्हों ने आलोचना की है। अद्वैतसिद्धान्त पर जो जो शंकाएँ उठ सकती हैं उन सब की चर्चा करके उनका निराकरण भी किया है। आचार्य सोमानन्द के प्रधान शिष्य आचार्य उत्पलदेव ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा और सिद्धत्रयी दार्शनिक ग्रन्थ लिखे हैं। उत्पलदेव के शिष्य रामकण्ठ ने तथा उत्पलवैष्णव ने स्पन्दकारिका पर टीकायें लिखीं। दसवीं ग्यारहवीं शती में हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञा पर विमर्शिनी टीका लिखी है। आचार्य उत्पलदेव ने स्वयं भी अपने ग्रन्थ पर ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृति नामक टीका लिखी थी जो अब नहीं मिलती। उस पर आचार्य अभिनवगुप्त की विवृतिविमर्शिनी नामक विस्तृत टीका उपलब्ध है। आचार्य अभिनवगुप्त के अन्य दो टीका ग्रन्थों परात्रिंशिकाविवरण और मालिनी–विजयवार्तिक के अतिरिक्त कई अन्य दार्शनिक ग्रन्थ तन्त्रालोक, तन्त्रसार, परमार्थसार, बोधपंचदशिका, परमार्थचर्चा,

तन्त्रवटधानिका मिलते हैं। तन्त्रालोक सब से अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। तन्त्रसार गद्य शैली में लिखा हुआ तन्त्रालोक का संक्षेप है तथा इसी का पद्यात्मक सार तन्त्रवटधानिका है। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित स्तोत्रों में भी शैवदर्शन के रहस्य और सिद्धान्त अनुस्यूत हैं। ये स्तोत्र हैं –

क्रमस्तोत्र, भैरवस्तोत्र, अनुभवनिवेदनस्तोत्र, अनुत्तराष्टिकास्तोत्र तथा देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र। भगवद्गीता पर भी उनकी टीका शैवदर्शन की छाप लिये हुए है। आचार्य अभिनवगुप्त के प्रधान शिष्य आचार्य क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञाहृदय, स्पन्दसंदोह, पराप्रवेशिका तथा बोधविलास नामक दार्शनिक ग्रन्थ लिखे। कुछ विद्वान् षट्त्रिंशत्–तत्त्व–संदोह का रचयिता भी आचार्य क्षेमराज को मानते हैं। उनके प्रत्यभिज्ञाहृदय का काश्मीर शैवदर्शन में वही स्थान है जो वेदान्तदर्शन में वेदान्तसार का है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में वह स्वयं लिखते हैं कि इस जगत् में कुछ ऐसे भक्त लोग हैं जो सुकुमार बुद्धि के हैं, जिन्हों ने कठिन तर्कशास्त्र में परिश्रम नहीं किया हे किन्तु जो परमेश्वर के साथ उस समावेश की अभिलाषा करते हैं जोकि शक्तिपात से विकसित होता है, उन के लिए ईश्वरप्रत्यभिज्ञा में जो उपदेश हैं उनके तत्त्व को थोड़ा खोला जा रहा है। इसी प्रकार योगराज ने अभिनवगुप्त के परमार्थसार पर एक टीका लिखी। बारहवीं शती में हुए जयरथ ने आचार्य अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक पर टीका लिखी। तेरहवीं शती के शितिकण्ठ ने उस समय की अपभ्रंश कश्मीरी भाशा में शैवदर्शन पर महानयप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखा।

पुण्यानन्दनाथ ने कामकलाविलास, स्वतन्त्रानन्दनाथ ने मातृकाचक्र विवेक तथा चक्रपाणिनाथ ने भावोपहार नामक ग्रन्थ लिखे। सत्रहवीं शताब्दी के साहिब कौल के कल्पवृक्षप्रबन्ध, सच्चिदानन्दकन्दली, शिवजीवदशक आदि कई ग्रन्थ अमुद्रित हैं। अठारहवीं शती के शिवोपाध्याय ने श्रीविद्या ग्रन्थ की रचना की तथा एक आगम ग्रन्थ विज्ञानभैरव पर टीका लिखी। इन दोनों लेखकों की कृतियों पर श्री शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त का प्रभाव दिखाई देता है। शैव

स्तोत्रों की रचना भी निरन्तर होती रही जिनमें काश्मीर शैवदर्शन के सिद्धान्तों की झलक मिलती है। इस प्रकार कह सकते हैं कि काश्मीर शैवदर्शन के विशाल साहित्य की रचना होती रही जो वर्तमान काल तक चलती रही है। आधुनिक काल में भी श्री लक्ष्मण जू महाराज तथा पण्डित बलजिन्नाथ जैसे शैवदर्शन के विद्वान् हुए हैं। पण्डित बलजिन्नाथ ने संस्कृत में स्वातन्त्र्यदर्पण नामक ग्रन्थ तथा हिन्दी और अंग्रेजी में भी शैवदर्शन पर ग्रन्थ लिखे हैं। श्री लक्ष्मण जू महाराज ने शिवसूत्रों पर तथा अन्य आगम ग्रन्थों की व्याख्या की है। काश्मीर शैवदर्शन पर इस परिचयात्मक लघु पुस्तक का लेखन इन्हीं दोनों आधुनिक आचार्यों की रचनाओं के आधार पर किया गया है।

द्वितीय अध्याय :
परम शिव तथा मायीय प्रमाता अर्थात् जीव का स्वरूप

काश्मीर शैवदर्शन में परमशिव के अनेक पर्याय मिलते हैं जैसे परासंवित्, परमेश्वर, पति, चैतन्य, आत्मन् आदि। परमशिव प्रकाशमय और विमर्शमय है। वह विश्वोत्तीर्ण अर्थात् विश्व से परे भी है और विश्वमय भी है। प्रकाश का अर्थ ज्ञान है और विमर्श का अर्थ क्रिया है। परमशिव की प्रकाशात्मकता ही उसकी ज्ञानस्वरूपता है और उसकी विमर्शात्मकता उसकी क्रियास्वरूपता है। अपनी प्रकाशात्मक ज्ञानरूपता की महिमा से वह विश्वोत्तीर्ण अर्थात् संसार से परे है तथा विमर्शात्मक क्रियारूपता की महिमा से वह विश्वमय अर्थात् संसार में व्याप्त है, संसार के रूप में प्रकट है। उसकी यह विश्वमयता ही उसकी शक्तिस्वरूपता है। अद्वैत वेदान्त का ब्रह्म केवल ज्ञानरूप और केवल विश्वोत्तीर्ण माना गया है। वहाँ क्रिया या विकार जो जगत् रूप है उसे मिथ्या कहा है। ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। सांख्यदर्शन के अनुसार पुरुष चेतन है और प्रकृति क्रियाशील है। इन दोनों दर्शनों के अनुसार ज्ञान (चैतन्य) और क्रिया एक साथ नहीं रहते है। न्यायदर्शन के अनुसार ईश्वर ज्ञाता भी है और कर्त्ता भी परन्तु उसका ज्ञातृत्व और कर्तृत्व दूसरे की अधीनता में चलता है। वह जीव के अदृष्ट परमाणु आदि उपादान कारणों के अधीन रह कर ही सृष्टि करता है। इसके विपरीत अद्वैत शैवदर्शन का परमशिव परिपूर्ण ज्ञानरूप भी है और परिपूर्ण क्रियारूप भी है। वह पूर्ण स्वतन्त्र है तथा अपनी स्वतन्त्र इच्छा से सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान और अनुग्रह रूप पंच कृत्यों को करता है। प्रत्यभिज्ञाहृदय के रचयिता क्षेमराज ग्रन्थ के प्रारम्भ में ऐसे शिव को नमस्कार करते हुए कहते हैं....

"नमः शिवाय सततं पंचकृत्यविधायिने।
चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थविभासिने॥

उस शिव को नमस्कार है जो निरन्तर पंचकृत्यों को करता रहता है, जो चिदानन्दस्वरूप अपने आत्मा रूपी परमार्थ को (जो प्रत्येक का आत्मा है) अवभासितया प्रकट करता है।"

शिव की क्रियारूपता या शक्तिरूपता उसका स्वातन्त्र्य है। वह अपनी परिपूर्ण स्वतन्त्रता का विमर्शन करता हुआ स्वयं ही अपने से ही, अपने भीतर अपने को ही अनन्त वैचित्र्यपूर्ण संसार के रूप में प्रकट करता है।

परिणामवाद के अनुसार जब कोई प्रकृति विकृति में बदलती है तो प्रकृति अदृश्य हो जाती है। इसी तरह जब विकृति पुनः प्रकृति में परिणत होती है तो विकृति अदृश्य हो जाती है। दूध से जब दही बनता है तो दूध कहीं नहीं रहता। बीज का जब अंकुर बनता है तो बीज दिखाई नहीं देता। काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार जब परमेश्वर अपनी स्वतन्त्र इच्छा से जीव और जगत् के रूप में प्रकट होता है तो उसकी परमेश्वरता छिपती नहीं, वैसी की वैसी ही बनी रहती है। जिस प्रकार निर्मल दर्पण में विविध रूपों के प्रतिबिम्ब पड़ने पर भी दर्पण की निर्मलता में कोई अन्तर नहीं आता उसी प्रकार परमेश्वर के शुद्ध प्रकाश में जगत् के प्रतिबिम्बित होते रहने से भी उसकी शुद्धता में कोई कमी नहीं आती। इसी में उसकी परमेश्वरता अभिव्यक्त होती हे। वह पूर्ण उसी प्रकार पूर्ण रहता है। सृष्टि और संहार के हो जाने से उसकी शुद्धता और परिपूर्णता में कोई कमी नहीं आती।

शिव चिद्रूप भी है और आनन्दरूप भी है। चिदात्मकता उसका स्वरूप है तथा उस चिद्रूपता का स्वभाव आनन्दरूपता है। स्वभाव स्वभावी में रहता है उससे अलग नहीं होता। इस लिए चित् और आनन्द दोनों शिव में साथ साथ ओतप्रोत भाव से रहते हैं। परमशिव की आनन्दात्मकता उसकी चेतना की एक प्रकार की हलचल है जिसे स्पन्द कहा जाता है। यही स्पन्द उसके स्वातन्त्र्य के अनन्त वैचित्र्यपूर्ण विलास का बीज माना गया है। यह उसकी आद्या इच्छा है जिससे वह जैसे चाहता है वैसे अभिव्यक्त हो जाता है। अपनी शक्ति से अपने भीतर अखिल विश्व को अवभासित करने की इस आद्या इच्छा को शिव तत्त्व कहा गया है। षट्त्रिंशत्तत्त्वसंदोह में शिवतत्त्व को प्रथम स्पन्द कहा है और

पराप्रवेशिका में शक्तितत्त्व को प्रथम स्पन्द माना है। वस्तुतः शिव और शक्ति दोनों अभेद रूप होने से दोनों को शिव की पहली हलचल स्वीकारा गया है। उससे आगे सदाशिव तत्त्व परमशिव का अन्तः निमेष है और ईश्वर तत्त्व उसका बहिर्निमेष है। सद्विद्या तत्त्व में अहम् (शिव) और इदम् (विश्व) की समान प्रतीति होती है। इन पाँचों तत्त्वों तक परमशिव की अभेद अनुभूति बनी रहती है। छटा तत्त्व माया है। यह भी परमशिव की ही शक्ति है, वेदान्त की माया की तरह अज्ञानरूपा और अनिर्वचनीय स्वरूप वाली नहीं। काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार (अपने को छुपाना) स्वरूपगोपनरूपा शिव की मायाशक्ति उसकी स्वातन्त्र्यशक्ति का ही एक रूप है। माया शब्द मा धातु से निष्पन्न होता है जिस का अर्थ है मापना, माप कर पृथक् कर देना, परिमित कर देना। माया के परिणामस्वरूप पाँच कंचुकों –कला, विद्या, राग, काल और नियति से परमशिव की अपरिमित शक्तियाँ मेय अर्थात् परिमित हो जाती हैं। परमशिव का सर्वकर्तृत्व संकुचित होकर किंचित् कर्तृत्व में परिणत हो जाता है, सर्वज्ञत्व अल्पज्ञता में बदल जाता है, पूर्णतृप्ति किंचित् तृप्ति में सीमित हो जाती है, नित्यत्व सीमित हो कर अतीत, वर्तमान और भविष्य में बंट जाता है तथा असीम स्वातन्त्र्य और असीम व्यापकत्व भी सीमित हो जाते हैं। परमशिव तो शुद्ध संवित् रूप होता है। यह सारा जगत् उस शुद्ध संवित् में संवित् के ही रूप में रहता है। परन्तु जब परमशिव अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अपनी मायाशक्ति द्वारा लीला करते हुए जगत् को अपने से भिन्न रूप में प्रकट करता हुआ उसे व्यावहारिक रूप देता है तो उस भूमिका में उतर कर वह अपनी अभेद दृष्टि को छिपा देता हे और भेददृष्टि से देखता हुआ शुद्ध अहं रूपी संवित् स्वरूपता को भुला डालता है। पाँच कंचुकों में लिपटी हुई और संकुचित बनी हुई संवित् को ही पुरुष या जीव कहते हैं इस प्रकार संकोच को प्राप्त हुआ शिव प्रमाता से मायीय प्रमाता या परिमित प्रमाता, पति से पशु या पुरुष या जीव हो जाता है। काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार जीव में सीमित ज्ञान है,सीमित क्रिया है तथा सीमित स्वातन्त्र्य भी है। जिस प्रकार परमशिव ज्ञाता कर्ता और स्वतन्त्र है उसी प्रकार परिमित प्रमाता जीव भी ज्ञाता कर्ता और

स्वतन्त्र है, चाहे सीमित रूप में ही सही। सांख्य के अनुसार पुरूष चेतन हे और प्रकृति क्रियाशील है। जब ज्ञान और क्रिया अलग अलग स्थानों में रहते हैं अर्थात् जो जानता है वह करता नहीं और जो करता है वह जानता नहीं तो नैतिक प्रश्नों के सम्बन्ध में दायित्वहीनता आ जाती है। जब ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या मान लिया जाता है तो भी समाज में दायित्ववहीनता और कर्त्तव्यबोध का अभाव दिखाई देने लगते हैं काश्मीर शैवदर्शन का इस दृष्टि से सांख्य और वेदान्तदर्शन से भिन्न मत है। इस के अनुसार शिव सत्य है तो उस में अवभासित जगत् भी सत्य है। जब जीव कुछ सीमा तक ज्ञान प्राप्त करने में और कर्म करने में भी स्वतन्त्र है तो अच्छे या बुर कर्म का दायित्व उसी का है। लोकव्यवहार में वह कर्मों के दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता। इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन का यह व्यावहारिक दृष्टिकोण व्यक्ति और समाज के लिए हितकर है।

स्वातन्त्र्य सिद्धान्त काश्मीर शैवदर्शन का मूल सिद्धान्त है। उसके अनुसार परमशिव ही परम सत्य तत्त्व है। वह शुद्ध प्रकाशस्वरूप है। संसार में जो कुछ भी दिखाई देता है वह सब उसकी परमेश्वरता की ही अभिव्यक्ति है। वह स्वयं इन सब रूपों में प्रकट होता है। ईश्वरता ज्ञान और क्रिया की स्वतन्त्रता को कहते हैं। परमशिव सब कुछ जानता है और अपने स्वातन्त्र्य से सब कुछ करता है। वह चिद्रूप है और उसकी चिद्रूपता या चिति विश्व की सिद्धि में पूर्ण स्वतन्त्र है। समस्त विश्व शिव के भीतर उसी तरह विद्यमान रहता है, जैसे बीज के भीतर शाखाओं, पत्तों, फूलों, फलों सहित वृक्ष विद्यमान रहता है। परन्तु बीज को अंकुर बनने में और फिर वृक्ष बनने में बाहरी साधनों भूमि, जल, धूप, हवा आदि के सहयोग की आवश्यकता होती है जबकि शिव पूर्णतया स्वतन्त्र है, उसे किन्हीं बाह्य साधनों की ज़रूरत नहीं होती। वह बिना किन्हीं सहयोगी साधनों के स्वयं ही, अपने से ही, अपने भीतर, अपने को ही, अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अनन्त वैचित्र्यपूर्ण संसार के रूप में प्रकट करता रहता है। ऐसा करने के लिए उसे न तो अनादि अनिर्वचनीय अविद्या की न ही अनादि कर्म आदि की आवश्यकता होती है। उसे सृष्टि सृजन में मूल प्रकृति परमाणु की भी ज़रूरत नहीं पड़ती। अपने से अलग किसी भी वस्तु की सहायता के बिना ही वह अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति से सृष्टि, स्थिति, संहार क्रियाओं को करता है। बीज से जब अंकुर प्रकट होता है तो बीज़ बीज़ नहीं रहता उस का अंकुर में बदलना अथवा परिणाम होता है। दूध से जब दही बनता है तो दूध दूध नहीं रहता है, दही में परिणत हो जाता है। यह परिणाम न्याय है जिस में एक वस्तु दूसरी वस्तु में बदलती है तो पहली वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। परमशिव से जगत् की अभिव्यक्ति प्रतिबिम्बन्याय से होती है। जैसे किसी दर्पण में विभिन्न वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ने से दर्पण में कोई विकार नहीं आता, वह पहले की तरह निर्मल दर्पण बना रहता है उसी प्रकार शिव अपने शुद्ध प्रकाश में विश्व के प्रतिबिम्बित होने पर उन प्रतिबिम्बों को धारण करता हुआ स्वयं शुद्ध शिव रहता है। उस में कोई विकार नहीं आता है।

दर्पण में प्रतिबिम्बित वस्तुएँ अभिन्न होती हैं पर उस से भिन्न दिखाई देती हैं। उसी प्रकार शिव के संवित् में प्रतिबिम्बित जगत् उससे अभिन्न होने पर भी उस संवित् से भिन्न भासित होता है। दर्पण के साथ दी गई इस उपमा में दो अपवाद हैं। एक तो यह है कि दर्पण को अपने भीतर किसी भी प्रकार के प्रतिबिम्ब धारण करने के लिए अपने से भिन्न वस्तुओं की आवश्यकता होती है जिन्हें उस दर्पण के सामने रखने पर ही वह उन के प्रतिबिम्बों को धारण करता है। शिव के विषय में ऐसा नहीं है। वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा मात्र से अपनी शक्तियों के प्रतिबिम्बों को प्रकट करता है। उसे अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है। यही उसका स्वातन्त्र्य है जिस से वह अपने ही भीतर समस्त प्रपंच को प्रतिबिम्बित करता है। दूसरा अपवाद यह है कि दर्पण तो अचेतन है। उसे अपने भीतर के प्रतिबिम्बों का बोध नहीं होता जबकि शिव चेतन है उसे अपनी चेतना में प्रतिबिम्बवत् प्रकट होती हुई अपनी कल्पनाओं का पूरा ज्ञान रहता है। जैसे एक नर्तक को भिन्न भिन्न पात्रों का अभिनय करते हुए भी अपने अस्तित्व का बोध रहता है कि मैं एक कलाकार हूं। यह संसार रूपी महानाटक शिव की स्वतन्त्रता और परमेश्वरता का ही विलास है। इस में जो कुछ भी है उसी शिव की सत्ता में विद्यमान है। वह इस महानाटक का सूत्रधार तो है ही, वही वस्तु, अनुकार्य पात्र, अनुकर्ता नट, रंगभूमि, नेपथ्य, वेशभूषा, अभिनय, रस, भाव, अलंकार, रस का आस्वाद लेने वाला रसिक, सब कुछ और सब कोई वही है। प्रश्न उठता है कि शिव यह सब लीला क्यों करते हैं। इसका उतर स्वभाववाद में मिलता है। परमशिव का यह नैसर्गिक स्वभाव है कि वह अपने स्वातन्त्र्य की क्रीड़ा के विलास में अपने को देश, काल और आकार की कल्पित सीमाओं में बाँध कर सीमित जैसा प्रकट कर देता है। जैसे आग का स्वभाव उष्णता है वैसे ही शिव का स्वभाव स्वातन्त्र्य लीला है। शिव की इसी लीला के भाग हैं :– स्वरूपगोपन और स्वरूपप्रकाशन। जब परमशिव अपनी स्वतन्त्र इच्छा से जीव और जगत् के रूप में प्रकट होता है तब यह अपने वास्तविक रूप का गोपन कर डालता है और अपने पराद्वैत भाव को भुला डालता है। जीवरूप में वह अपने को शिव से तथा जगत् से भिन्न समझने लगता है। पुनः भूले हुए वास्तविक रूप की खोज आरम्भ करता है और

शिवता को पहचान कर स्वरूपप्रकाशन करता है। यही परमेश्वरता और स्वातन्त्र्य है। जीवभाव में भी शिव की ईश्वरता और स्वतन्त्रता पूरी तरह नष्ट नहीं होती केवल सीमित हो जाती है। जो भी व्यक्ति जितने क्षेत्र में ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति से युक्त होता है उसकी उतने क्षेत्र में ईश्वरता होती है क्योंकि उतने क्षेत्र में वह जो चाहे जान सकता है और जो चाहे कर सकता है। उसका अधिकार क्षेत्र एक घर है या एक ग्राम या एक नगर या एक प्रान्त या एक राष्ट्र उसी क्रम से वह छोटा या बड़ा ईश्वर होता है। सामाजिक उत्तरदायित्व की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है क्योंकि इस द्वारा जगत् की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार कर मनुष्य को कर्तव्य पालन का निर्देश दिया गया है। जितने क्षेत्र में उसे जानने और कर्म करने की स्वतन्त्रता है उतने क्षेत्र में उचित ढंग से सूचना प्राप्त कर उचित कर्तव्य कर्म करने का उत्तरदायित्व उसी का है।

काश्मीर शैवदर्शन का दूसरा प्रमुख सिद्धान्त स्पन्द सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के कारण ही काश्मीर शैवदर्शन को स्पन्दशास्त्र कहा जाता है। शैवाचार्यों के अनुसार स्पन्द स्वातन्त्र्य की ही एक स्फुरता या छलकन या फड़कन है। परमशिव अचल है परन्तु अपने स्वातन्त्र्य से अचल होता हुआ ही अपने को गतिशील जैसा अभिव्यक्त करता रहता है। वह एक साथ अविचल विश्वोत्तीर्ण शिव भी है और गतिशील विश्वमय शक्ति भी है। उसकी परमेश्वरता के ये दोनों पहलू हैं। शिवता उसकी ज्ञानात्मकता है और शक्तिता उसकी गतिशीलता है। शिव प्रकाशस्वरूप है और प्रकाश का स्वभाव विमर्श अथवा अपने अस्तित्व की प्रतीति होता है। यह प्रतीति जानने की क्रिया है। काश्मीर शैवदर्शन में ज्ञान का स्वभाव ही क्रिया माना गया है क्योंकि जानना भी तो एक क्रिया है। जहाँ ज्ञान है वहाँ क्रिया है और जहाँ क्रिया है वहाँ ज्ञान है क्योंकि जो कुछ किया जाता है वह बिना जाने नहीं किया जाता। अद्वैत वेदान्त में परमब्रह्म को शुद्ध ज्ञानस्वरूप माना गया है क्रियास्वरूप नहीं। उसे निष्क्रिय तथा अकर्ता स्वीकार किया गया है। काश्मीर शैवदर्शन में परमशिव को चैतन्ययुक्त और ज्ञान–क्रियात्मक हलचल से युक्त कहा है। वह आनन्दरूप है और

उसकी आनन्दात्मक गतिशीलता ही स्पन्द या पारमेश्वरी लीला है जिसके पाँच मुख्य अंग पाँच कृत्य हैं.... सृष्टि, स्थिति संहार, पिधान और अनुग्रह। अपने प्रकाश के भीतर स्थित समस्त ब्रह्माण्ड को बहिर्मुख स्पन्दगति से अभिव्यक्त करने की लीला को सृष्टि कहते हें। प्रकट किये गए विश्व को नियमपूर्वक चलाते रखने की लीला को स्थिति कहते हैं। पुनः उस ब्रह्माण्ड को अपने भीतर विलीन करने की शिवलीला संहार कही जाती है। जब शिव स्वेच्छा से जीवरूप में प्रकट होकर अपने पारमार्थिक स्वरूप को भूलने और छिपाने की लीला करते हैं तो उसे पिधान कृत्य कहते हैं। जब परमेश्वर गुरुकृपा या शास्त्राभ्यास द्वारा जीव को अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने की प्रेरणा देकर उसे वह पहचान कराते हैं तो उन की उस लीला को अनुग्रह कहा जाता है।

स्पन्द की बहिर्मुखी गति और अन्तर्मुखी गति दोनों लगातार चलती रहती हैं। बहिर्मुखी गति में शिव अपनी विश्वमयता का विमर्श करता है। यह गति शिव की अवरोहण लीला को प्रकट करती है जिस में जगत् का विकास होता है और शिवता का संकोच होता है। अन्तर्मुखी गति में शिव अपनी विश्वोत्तीर्णता का विमर्श करता है। इस गति में संसार की संसारता संकुचित हो जाती है और शिवता ही विकास को प्राप्त होती है। स्पन्द की बहिर्मुखी गति क्रिया है तो अन्तर्मुखी गति ज्ञानयुक्त क्रिया है।

जगत् को मिथ्या न मानने वाले काश्मीर शैवदर्शन की पराद्वैत दृष्टि में एक मिट्टी का ढेला भी परमशिव ही है। परमशिव में शिवता पूर्णतया विकसित होती है जबकि जड़ मिट्टी के ढेले में वह अत्यन्त संकुचित अवस्था में अप्रकट सी होकर रहती है। निम्न स्तर के सामान्य जीवों में वह शिवता अंशमात्र प्रकट होती है, उच्च स्तर के सिद्धों महात्माओं में वह अधिक मात्रा में दिखाई देती है। इस प्रकार शिवता का संकोच और संसारता का विकास, शिवता का विकास और संसारता का संकोच साथ साथ ही चलते रहते हैं। एक भाव का विकास ही दूसरे भाव का संकोच और एक भाव

का संकोच ही दूसरे भाव का विकास बनता रहता है। ये परमशिव के स्वातन्त्र्य की लीलाएँ ही हैं जो उस के स्पन्द की बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी गति से अभिव्यक्त होती हैं।

स्पन्द की गति में तीन भूमिकाओं का भास होता है। पहली भूमिका को शक्ति भूमिका कहते हैं। इस भूमिका में शिव और शक्ति में पूर्णतया अभेद की स्थिति होती है। संसार तो शिवशक्ति के शुद्ध संवित् के प्रकाश में विलीन होता है। वहाँ केवल अहं की प्रतीति होती है इंद का नाम भी नहीं होता। स्पन्द की दूसरी भूमिका शुद्धविद्या भूमिका है जिस में शुद्ध प्रकाश रूपी प्रमाता के भीतर इदं अर्थात् प्रमेय का भी आभास होने लगता है। इस भूमिका में भेद और अभेद की मिली जुली दृष्टि होती है। अहं इदं अर्थात् मैं यह हूं या इदं अहं अर्थात् यह मैं हूं , यह आभास होता है। स्पन्द की गति की तीसरी भूमिका को माया भूमिका कहा गया है। इस भूमिका में भेद दृष्टि होती है जिस में अहं अपने को इदं से भिन्न मान लेता है। यह परमशिव की अवरोहण लीला है। पुनः विपरीत क्रम से भेद से भेदाभेद ओर भेदाभेद से अभेद की ओर आरोहण प्रारम्भ हो जाता है। यह सब स्पन्द की महिमा है।

चतुर्थ अध्याय : काश्मीर शैवदर्शन में बन्धन और मुक्ति

काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार बन्धन और मुक्ति की कल्पना केवल लोक व्यवहार की दृष्टि से है। पराद्वैत शैव की दृष्टि से तो जड़ चेतन, बन्धन मुक्ति सभी द्वन्द्व परमशिव ही हैं। जब शिव अपनी स्वतन्त्र इच्छा से विश्वरूपता में प्रकट होकर अपनी परेमश्वरता को भुला डालता है और जीवरूप बनकर विश्वमय स्वरूपों को प्रतिबिम्ब न समझ कर यथार्थ समझता है तो तीन प्रकार के मलों से घिर जाता है। मलों से आवृत हुआ वह बन्धन का पात्र बन जाता है। प्रत्यभिज्ञाहृदय के नौवें सूत्र में कहा है कि चित्स्वरूप (शिव) शक्ति के संकोच से मल से ढका हुआ संसारी (एक जीवन से दूसरे जीवन में संसरण करने वाला) बन जाता है। यही बन्धन है। जीवरूप बना हुआ वह जब पुनः शिव के अनुग्रह से, गुरू के उपदेश से तथा शास्त्राभ्यास से अपना वास्तविक स्वरूप पहचान लेता है और उस पहचान के परिणाम स्वरूप समस्त विश्व को अपने स्वातन्त्र्य के विलास से कल्पित हुआ प्रतिबिम्बरूप जान लेता है तो वह मुक्ति का पात्र हो जाता है। वैसे तो बन्धन और मुक्ति भी परमशिव की ही क्रीड़ाएँ है परन्तु शैवदर्शन के यथार्थवाद की दृष्टि से स्वरूप का भूलना रूप बन्धन भी यथार्थ है तथा असल रूप की पहचान भी यथार्थ है। स्वरूपविस्मृति की दशा में जीवरूप को घेरने वाला मल तीन प्रकार का होता है – आणव, मायीय और कार्म। अणु का अर्थ हे क्षुद्र, संकुचित। जब शिव जीवभाव में अपनी प्रकाशरूपता को भुला कर कहीं प्राण को, कहीं बुद्धि को और कहीं शरीर को ही अपना आप समझ लेता हे तो उसका यह पूर्ण स्वरूप का अज्ञान एक प्रकार का आणव मल कहलाता है। दूसरे प्रकार के आणव मल में वह अपने स्वतन्त्र क्रियाशक्तिरूप ऐश्वर्य को भुला कर अपने को निष्क्रिय तथा ऐश्वर्यहीन समझता है। जब प्रमाता माया के प्रभाव से परमेश्वर को, संसार को तथा अन्य जीवों को अपने से भिन्न समझता है तो इस भेददृष्टिरूप मल को मायीय मल कहते हैं। जब प्रमाता अपने सब कुछ करने के सामर्थ्य को भुला कर एक विशेष शरीर, विशेष मन, विशेष वाणी द्वारा किये जाने वाले कर्मों के कर्तृत्व का अभिमान करता है और उन परिमित कर्मों की वासनाओं के परिणाम स्वरूप भिन्न भिन्न योनियों में जन्म लेने को बाध्य होता है तो उसका वह परिमित कर्मों के कर्तृत्व का अभिमान और कर्मों की वासना कार्म मल कहलाते हैं। इन्ही एक, दो या तीनों मलों से घिरा

हुआ जीव बन्धन का पात्र बनता है। तन्त्रालोक (1,22) में अज्ञान को बन्धन का मूल तथा ज्ञान को मोक्ष का कारण माना है। यहाँ अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव न होकर ज्ञान का संकोच होता है। आश्रय भेद से यह अज्ञान भी दो प्रकार का है पौरुष अज्ञान और बौद्ध अज्ञान। पौरुष अज्ञान का आश्रय स्वयं पुरुष या जीव होता है जिस के कारण जीवभाव का संस्कार प्रकट होता है और शिवभाव का संस्कार विलीन सा हुआ रहता है। बौद्ध अज्ञान का आश्रय पुरुष की बुद्धि होती है जिस के कारण वह शरीर आदि जड़ पदार्थ को ही अपना आप समझता हुआ सांसारिक व्यवहार को चलाता रहता है। संसार के पदार्थों को शिवरूप न समझ कर जड वस्तुओं के रूप में देखता है। बुद्धि के द्वारा ही उसे अपने सीमित कर्तृत्व का अभिमान रहता है। यही बौद्ध अज्ञान है। दोनों प्रकार का अज्ञान बन्धन बनता है और दोनों प्रकार का ज्ञान बौद्ध ज्ञान तथा पौरुष ज्ञान मुक्ति पाने के लिए आवश्यक होता है। वस्तुओं को शिव रूप में समझना शुद्ध विकल्प है और उन्हें शिव से भिन्न प्रमेय अर्थात् संसार रूप में समझना अशुद्ध विकल्प है। जीव का बुद्धि से अशुद्ध विकल्पों को करते रहने का स्वभाव ही बौद्ध अज्ञान कहलाता है। पौरुष अज्ञान मूल अज्ञान है जिसमें जीव आणवादि मलों का पात्र बनता है। बौद्ध अज्ञान गुरू के उपदेश से और शास्त्राभ्यास से दूर हो सकता है जब बुद्धि के स्तर पर जीव समझ लेता है कि मैं असीम परिपूर्ण शुद्ध संवित् हूं। पौरुष अज्ञान पौरुष ज्ञान से ही दूर होता है। यह ज्ञान गुरु की कृपा से मलों के धुल जाने पर होता है। दोनों प्रकार का अज्ञान हट जाने पर ही जीव मुक्ति का पात्र बनता है।

काश्मीर शैवदर्शन में मुक्ति के दो भेद हैं, जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति। मर्त्य शरीर में रहते हुए अज्ञानमुक्त जीव संसार प्रपंच को मदारी के खेल की तरह देखता हुआ उससे केवल आनन्द लेता है पर न तो उस में फँसता है और न ही उसके अनुकूल या प्रतिकूल दृश्यों से प्रभावित होता है। जब तक प्रारब्ध कर्म के अनुसार उसका शरीर रहता है तब तक वह संसार रूपी महानाटक के दृश्यों को देखता हुआ, लोकल्याण करता हुआ, लोकव्यवहार चलाता रहता है। यह उसकी जीवन्मुक्ति की दशा होती है। एक और उत्कृष्ट जीवन्मुक्ति की स्थिति होती है जिस में अज्ञानमुक्त

जीव मर्त्य देह को छोड़ कर दिव्य सूक्ष्म शरीर को प्राप्त करता हे तथा उस में रहते हुए चिरकाल तक संसार पर निग्रह और अनुग्रह की लीला करता है। अन्त में वह शरीर भी छूट जाने पर विदेह मुक्ति को पा लेता हे। विदेह मुक्ति का अनुभव करने वाला वह स्वयं परमशिवरूप हो जाता है।

मलों के तारतम्य और तदनुसार बन्धन और मुक्ति की पात्रता की दृष्टि से काश्मीर शैवदर्शन में प्राणियों को इन सात श्रेणियों में रखा गया हैः— अकल, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र या विद्येश्वर, विज्ञानाकल, प्रलयाकल तथा सकल। सबसे निम्न श्रेणी के सकल तो तीनों प्रकार के मलों से घिरे हुए बन्धन में रहते हैं। प्रलयाकलों में आंशिक रूप से आणव मल और मायीय मल रहते हैं। ये प्राणी प्रायः सुषुप्ति की दशा में रहते हुए कुछ समय तक कलातत्त्व के विकारों से बच जाते हैं। विज्ञानाकलों को आत्मा की ज्ञानरूपता का अनुभव होता है पर उसकी क्रियारूपता का नहीं अतः वे केवल प्रकाशरूपता में चिरकाल तक ठहरे रहते हैं। इन से ऊपर की चारों श्रेणियों के प्राणी विकारो से मुक्त, शुद्ध चैतन्य स्वरूप वाले तथा ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति से सम्पन्न होते हैं। विद्येश्वर अहं और इदं में भेददृष्टि रखने से शुद्धाशुद्ध कोटि में गिने जाते हैं। मन्त्रेश्वरों में इदं का अंश प्रधान तथा अहं का अंश अप्रधान होता है, मन्त्रमहेश्वरों में अहं का अंश प्रधान तथा इदं का अंश अप्रधान होता है। अभेदभाव और भेदभाव दोनों का अवभासन होने से इन्हें भी शुद्धाशुद्ध कोटि में रखा जाता है। अकल प्राणियों को सदैव अपने परिपूर्ण अहं का ही अवभास होता है। इन चारों श्रेणियों के प्राणी स्थूल शरीर, अन्तःकरण, बाह्य इन्द्रिय, स्थूल प्राण आदि द्वारा काम नहीं करते, केवल चैतन्य के स्पन्दन से ही व्यवहार करते हैं। ये सभी मुक्ति के पात्र होते हैं।

पंचम अध्याय : काश्मीर शैवदर्शन में जगत् सृष्टि

काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार यह समस्त ब्रह्माण्ड परमशिव के भीतर उसकी परमेश्वरी शक्तियों के रूप में उसी प्रकार विद्यमान रहता है जैसे पीपल का एक विशाल वृक्ष छोटे से बीज में विद्यमान रहता है। शिव स्वयं ही अपनी स्वतन्त्र इच्छा के बल से ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट होता है। बीज का वृक्ष के रूप में बाहिर प्रकट होना और शिव का जगत् के रूप में प्रकट होना इन दोनों क्रियाओं में कुछ अन्तर भी हैं। बीज केवल अपनी शक्ति से वृक्ष रूप में प्रकट नहीं हो सकता। उसे वृक्ष बनने के लिए भूमि, जल, धूप, हवा आदि कई बाहरी साधनों की सहायता की आवश्यकता होती है। बीज को इस बात का ज्ञान भी नहीं होता कि विशाल वृक्ष उस के भीतर सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। बीज से वृक्ष की उत्पत्ति परिणाम न्याय से होती है अर्थात् बीज जब वृक्ष के रूप को धारण करता है तो वह बीज नहीं रहता। ये तीनों बातें स्वयं ही ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट होते हुए शिव पर नहीं घटतीं। शिव को जीव और जगत् के रूप में प्रकट होते हुए किसी बाहरी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। वह अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से जब चाहे और जैसे चाहे वैसे ब्रह्माण्ड को प्रकट करता है। शिव को यह भी ज्ञान होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड उसमें विद्यमान रहता है। वह बीज की तरह जड़ नहीं है जिसे अपने अस्तित्व की भी अनुभूति नहीं होती। शिव से जगत् की सृष्टि होते हुए शिव में कोई विकार नहीं आता। वह सदा विशुद्ध परिपूर्ण शिव ही बना रहता है। शिव से विश्व की सृष्टि प्रतिबिम्ब न्याय से होती है जैसे दर्पण में नाना प्रकार की वस्तुओं तथा क्रियायों का प्रतिबिम्ब पड़ता है पर उस से दर्पण में कोई विकार नहीं आता, वह पूर्ववत् निर्मल और स्वच्छ बना रहता है उसी प्रकार शिव से सृष्टि प्रकट होने पर शिव में न तो कोई विकार आता है न कोई कमी। वह सदैव परिपूर्ण ही बना रहता है। हाँ एक अन्तर अवश्य है कि दर्पण को प्रतिबिम्ब धारण करने के लिए अपने से बाह्य पदार्थों के साम्मुख्य की अपेक्षा होती है परन्तु शिव को किसी भी अन्य पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती, उस की अपनी पारमेश्वरी शक्तियाँ उसी के भीतर उसी की स्वतन्त्र इच्छा से प्रतिबिम्बित होती हैं। पारमेश्वरी शक्तियों के वे

प्रतिबिम्ब जब बहिर्मुखतया चमक उठते हैं तो ब्रह्माण्ड रूप में प्रकट होते हैं। काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार ब्रह्माण्ड के छत्तीस तत्त्व शिव की शक्ति के ही बहिर्मुख प्रतिबिम्ब हैं। शिव सत्य है और शिव से प्रकट हुआ जगत् भी सत्य है। अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में ब्रह्म तो सत्य है पर जगत् मिथ्या है। यह मिथ्यावाद समाज को निष्क्रियता की ओर ले जाता है, जबकि काश्मीर शैवदर्शन का जगत् की व्यावहारिक सत्यता का सिद्धान्त व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उपयोगी है।

सृष्टि प्रक्रिया में परम शिव से ही ३६ तत्त्वों की अभिव्यक्ति होती है। इन में प्रथम पाँच तत्त्व, शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और सद्विद्या शुद्ध सृष्टि या शुद्ध अध्वा कहे जाते हैं तथा माया से ले कर पृथ्वी तक ३१ तत्त्व अशुद्ध सृष्टि या अशुद्ध अध्वा कहे गए हैं। षट् त्रिंशत्तत्त्वसन्दोह में इन तत्त्वों की व्याख्या की गई है।

शिव तत्त्व : परमशिव जब अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से अपने भीतर से अखिल विश्व को अवभासित करने की इच्छा करता है तो विश्व को प्रकट करने की उसकी उस आद्या इच्छा – अवस्था को ही शिव तत्त्व कहते हैं। परमशिव का यह प्रथम स्पन्द है। शिव तत्त्व में चित् शक्ति की प्रधानता होती है। प्रत्येक जीव में रहने वाला आत्मा ही शिव तत्त्व है जिसे प्रमाता भी कहते हैं। शिव तत्त्व की दशा की अनुभूति करने वाला प्रमाता शाम्भव कहा जाता है। वह द्वैत दशा से अद्वैत दशा में पहुँचा होता है।

शक्ति तत्त्व : काश्मीर शैवदर्शन के बहुत से ग्रन्थों में शिवतत्त्व और शक्तितत्त्व दोनों को ही परमशिव का प्रथम स्पन्द माना गया है। शक्ति शिव से उसी तरह अभिन्न है जैसे अग्नि से उसकी जलाने की शक्ति। शिवता की स्फुट अभिव्यक्ति में शक्तिता छिपी रहती है और शक्तिता की स्फुटता में शिवता छिपी रहती है। ये दोनों ही शक्तियाँ परस्पर ओतप्रोत भाव से अभिन्न हैं। शिव की ज्ञानरूपता उसकी शिवता और उसकी क्रियारूपता उसकी शक्तिता है। प्रकाश का स्वभाव विमर्श होता है। शिव प्रकाश रूप है तो शक्ति उस का स्वभाव विमर्श रूप है। प्रकाश का तात्पर्य

है अपना आभास या ज्ञान और विमर्श उस ज्ञान को जानने की क्रिया है। शक्ति के कारण ही शिव को "अहमस्मि मैं हूं" इसकी प्रतीति होती है। शक्ति तत्त्व में आनन्द की प्रधानता होती है और शक्ति तत्त्व की अनुभूति करने वाला प्राणी शाक्त कहलाता है।

सदाशिव तत्त्व : शैवदर्शन का तीसरा तत्त्व सदाशिव है जिस में भेदाभेद की दशा होती है और विश्व की अस्फुट सी प्रतीति होती है। "अहमस्मि मैं हूं" इस प्रतीति के आगे "अहमिदम् मैं यह हूं" यह प्रतीति होती है। यहाँ अहं शिव है और इदं विश्व है परन्तु प्रधानता अहं की है इदं की नहीं। इस सदाशिव तत्त्व में विश्व के ज्ञान का आभास कुछ इस तरह का होता है जैसे चित्र बनाने से पहले चित्रकार के मन में चित्र की कल्पना होती है। इस भेदाभेद दशा की अनुभूति करने वाला प्राणी मन्त्र महेश्वर कहा जाता है।

ईश्वर तत्त्व : शैवदर्शन का चौथा तत्त्व ईश्वर है जिस में भेदाभेद की ही दशा होती है। इस में इदं अंश की प्रधानता होती है परन्तु प्रमाता स्वयं को विश्व से अलग नहीं मानता इसलिए भेद और अभेद दोनों रहते हैं। सदाशिव दशा में ज्ञानशक्ति की तथा ईश्वर दशा में क्रियाशक्ति की अभिव्यक्ति मानी गई है।

शुद्धविद्या : शैवदर्शन का पाँचवा तत्त्व शुद्धविद्या है जिसमें अहम् और इदम् की समान प्रतीति होती है। यह भी भेदाभेद की दशा है। इस में क्रियाशक्ति की प्रधानता होती है। शिव तत्त्व से ले कर शुद्ध विद्या तक के पाँचों तत्त्व शुद्ध सृष्टि कहलाते हैं क्योंकि इन में माया का सर्वथा अभाव होता है।

माया : शैवदर्शन के अनुसार परमशिव की इच्छा से ही माया तत्त्व की सृष्टि होती है। यह स्वस्वरूप को छिपाने वाली शिव की शक्ति ही है, वेदान्त की माया की तरह उनकी उपाधि मात्र नहीं। यह अवस्तुभूत न होकर एक वस्तुभूत तत्त्व है जो आगे समस्त प्रकृति, पुरुष, कंचुक आदि तत्त्वों का उपादान कारण बन जाता है।

भेददृष्टिमयी माया के प्रभाव से शिव की अभेददृष्टि सर्वथा छिप जाती है और वह अपने आप को संकुचित संवित् के रूप में देखने और समझने लगता है। इस भूमिका में प्रमाता पुरुष तत्त्व के रूप में और प्रमेय मूलप्रकृति तत्त्व के रूप में प्रकट हो जाते हैं। माया से क्रमशः कला, विद्या, राग, नियति और काल इन पाँच तत्त्वों का आविर्भाव होता है। इन्हें परमशिव पर आवरण डालने के कारण कंचुक भी कहा जाता है।

कला तत्त्व : शिव के सर्वकर्तृत्व के स्थान पर किंचित् कर्तृत्व का आ जाना कला तत्त्व है। शिव जीव रूप में अपने सर्वकर्तृत्व के सामर्थ्य का गोपन करके अपनी क्रियाशक्ति को संकुचित कर देता है। इसे ही कला तत्त्व कहा गया है।

विद्या तत्त्व : इसमें शिव अपनी सर्वज्ञता की शक्ति का गोपन करके जीव रूप में अल्पज्ञता की अनुभूति करता है। माया के प्रभाव से प्रमाता (जीव) की वास्तविक शक्ति छिप जाती है जिस कारण उसका ज्ञान सामर्थ्य संकुचित हो जाता है।

राग तत्त्व : माया के प्रभाव से प्रमाता की दिलचस्पी किन्हीं विशेष प्रमेयों अर्थात् सांसारिक वस्तुओं में होने लगती है। वह अपने देह और देह के अनुकूल वस्तुओं को अधिक महत्त्व देने लगता है। इस तरह उसका ज्ञानसामर्थ्य और क्रियासामर्थ्य अधिक संकुचित हो जाते हैं। इस संकोच का कारण बना हुआ यह देहादि कुछ विशेष प्रमेयों पर गुणवत्ता का आरोप करना ही राग कहलाता है।

नियति तत्त्व : यह तत्त्व प्रमाता के स्वातन्त्र्य का अपहरण कर लेता है। इस भूमिका के भीतर नियति का स्वरूप वे नियम हैं जिन के अनुसार प्राणी अपने पूर्व कर्मों का फल भोगने को बाध्य होता है। नियति के अनुसार किसी विशिष्ट कारण से किसी विशिष्ट कार्य की उत्पत्ति होती है।

काल तत्त्व : शिव की नित्यता शक्ति को सीमित करने वाला तत्त्व काल है। माया के प्रभाव से कालातीत शिव जीव रूप में वर्तमान, भविष्य और भूतकाल में विभक्त हो जाता है। प्रमाता उस प्रकार के क्रम की कल्पना करता है कि मैं ऐसा था, मैं ऐसा हूं, मैं ऐसा होऊंगा, यह पौर्वापर्य का क्रम काल है।

पुरुष तत्त्व : पाँच कंचुकों में लिपटे हुए और इस प्रकार संकुचित हुए अहं का नाम ही पुरुष है। परमशिव अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अपने वास्तविक रूप को छिपा कर सर्वकर्तृत्व के स्थान पर किंचित् कर्तृत्व को तथा सर्वज्ञता के स्थान पर अल्पज्ञता को धारण करता हुआ पति से पशु दशा को प्राप्त होकर पुरुष कहलाता है। इस दशा में पुरुष स्थूल शरीर को अपना आप अर्थात् अहं समझने लगता है।

प्रकृति तत्त्व : सांख्य दर्शन के अनुसार तीन गुणों की साम्यावस्था का नाम मूलप्रकृति है। काश्मीर शैवदर्शन का सिद्धान्त यह है कि सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों का मूल भी शिव की तीन शक्तियों के भीतर है। शिवभाव में प्रमाता में अपरिमित ज्ञानशक्ति, अपरिमित क्रियाशक्ति के अतिरिक्त एक मायाशक्ति भी होती है। जीवभाव में शिव की इन्हीं शक्तियों को जीव के गुण कहते हैं। शिव की ज्ञानशक्ति ही जीव का सत्त्वगुण कहलाती है, शिव की क्रियाशक्ति ही रजोगुण कहलाती है और मायाशक्ति ही तमोगुण कहलाती है। इस प्रकार इन तीनों गुणों का बीज शिव की तीनों शक्तियों में विद्यमान है। यही तीन गुण लोकव्यवहार में जीव के सुख दुःख और मोह बन जाते हैं। गुणों की समता की अवस्था में तेइसों तत्त्व मूलप्रकृति के भीतर विलीन होकर रहते हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार तो प्रकृति में उसके रजोगुण की चंचलता से क्षोभ उत्पन्न होने पर गुणवैषम्य होता है परन्तु काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार यह क्षोभ भी शिव ही करता है। परमशिव ही अपने चैतन्यमय स्वातन्त्र्य के विलास से अपने ही भीतर गुणातीत – गुणमय आदि सभी प्रकार के तत्त्वों को प्रतिबिम्ब के तौर पर प्रकट करता रहता है।

महत् तत्त्व : महत् से लेकर पृथ्वी तक तेइस तत्त्वों की सृष्टि गुणमयी सृष्टि कही गई है। मूलप्रकृति में क्षोभ आने पर वह सर्वप्रथम तीन अन्तःकरणों महत्, अहंकार और मन में परिवर्तित होती है। प्रथम अन्तःकरण महत् है। इस तत्त्व को बुद्धि भी कहते हैं। बुद्धि एक स्वच्छ जड़ तत्त्व होती है परन्तु प्रमाता के प्रतिबिम्ब को धारण करती हुई उस सम्बन्ध से चेतन जैसी प्रतीत होती है और चेतन की तरह काम करती है। बुद्धि ही पुरुष का सब से प्रधान और निकटतम करण अर्थात् साधन है।

अहंकार तत्त्व : विषय के सविकल्पक या निर्विकल्प का आभास को जीव के साथ सम्बद्ध करने वाली शक्ति अहंकार है। इस के प्रभाव से जीव बुद्धि, शरीर या प्राण की क्रियाओं के विषय में यह समझता है कि इन्हें मैं करता हूं। देह के विषय में उसे यह अहंकार होता है कि यह मैं हूं। काश्मीर शैवदर्शन में अहंकार तत्त्व को इस दृष्टि से हेय न मान कर परम उपादेय माना गया है कि समस्त विश्व को अहं समझना ही जीवन्मुक्ति है।

मनस् तत्त्व : तीसरा अन्तःकरण मन है। व्यावहारिक विषयज्ञान के होने में जब इन्द्रियों के मार्ग से चित्त पर विषय का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो आभास होता है कि कोई वस्तु है पर वह क्या है यह नहीं कहा जा सकता। इस अवस्था में मन वस्तु के विषय में अनेकों नामरूपों की अस्फुट कल्पना करता है। इन नामरूपों के उन्मेषों को करने वाली जीव की मननशक्ति को मन कहते हैं। अन्तःकरणों के बाद बाह्यकरणों की उत्पत्ति होती है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ : अहंकार जब सत्त्वगुणप्रधान बनकर परिणाम को प्राप्त करता है तो उससे मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना और घ्राण अभिव्यक्त होती हैं। श्रोत्र आकाश के गुण शब्द को सुनने के पुरुष के सामर्थ्य या शक्ति को कहते हैं। हैं। यह इन्द्रिय स्थूल शरीर में कान के छिद्र में ठहरती है। त्वचा सर्द, गर्म, नर्म, कठोर आदि स्पर्शों को जानने के पुरुष के सामर्थ्य को कहते हैं। यह इन्द्रिय स्थूल शरीर में सभी अंगों में रहती है। चक्षु रूप, रंग, आकार आदि को जानने के पुरुष के साधन को कहते हैं। चक्षु इन्द्रिय स्थूल शरीर में आँखों में ठहरती है। रसना खट्टा, मीठा आदि स्वाद के जानने के पुरुष के साधन को कहते हैं। स्थूल शरीर में यह जीभ के अग्र भाग में ठहरती है। गन्ध को जानने के पुरुष के साधन को घ्राण कहते हैं। यह इन्द्रिय नाक छिद्रों के मुख पर रहती है। ये पाँचों इन्द्रियाँ विषयों के प्रतिबिम्बों को लेकर बुद्धि के हवाले कर देती हैं। बुद्धि इन प्रतिबिम्बों को आकार देती है जिन्हें पुरुष विषय के रुप में जान लेता है। पुरुष का यह सीमित ज्ञान ही उसकी अशुद्ध विद्या कहा गया है।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ : अहंकार से ही पाँच कर्मेन्द्रियाँ वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ अभिव्यक्त होती हैं। इन्हीं से पुरुष कला के सभी व्यापारों को कर पाता है। वाक् उसके बोलने का साधन है। यह इन्द्रिय स्थूल शरीर में जीभ में रहती है। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा इन चार वाणियों में केवल वैखरी वाणी ही इसके अधिकार क्षेत्र में है। पाणि पुरुष के किसी वस्तु को ग्रहण करने का प्रमुख साधन है परन्तु पुरुष का यह ग्रहण करने का सामर्थ्य शरीर के और अंगों टांगों, मुख आदि में भी रहता है। पाद इन्द्रिय इधर उधर चलने फिरने आदि क्रियाओं को करने का साधन है। इस इन्द्रिय का मुख्य स्थान तो पैर हैं परन्तु अन्य कई अंगों घुटनों, हाथों, पेट आदि जिन से भी गमन क्रिया की जा सकती है उन में भी यह पाद इन्द्रिय ठहरती है। मलत्याग की क्रिया का साधन बनी हुई इन्द्रिय पायु कहलाती है। मूत्रत्याग और विषयानन्द की क्रिया का साधन बनी हुई इन्द्रिय उपस्थ कहलाती है। इन दोनों के मुख्य स्थान क्रमशः गुदा और जननेन्द्रिय हैं। सत्त्वगुणप्रधान बने हुए अहंकार से मन और ज्ञानेन्द्रियाँ तथा रजोगुणप्रधान बने हुए अहंकार से कर्मेन्द्रियाँ अभिव्यक्त होती हैं।

पाँच तन्मात्र : तमोगुणप्रधान बने हुए अहंकार से ज्ञानेन्द्रियों के सूक्ष्म विषयों की अभिव्यक्ति होती है। ये विषय हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।

पाँच महाभूत : ये सूक्ष्म विषय ही जब परिणाम द्वारा स्थूल रूप ग्रहण करते हैं तो पाँच महाभूतों आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की अभिव्यक्ति होती है। महत् से ले कर पृथ्वी तक इन तेइस तत्त्वों को गुणमयी सृष्टि कहते हैं। इन गुणमय तत्त्वों के विषय में सांख्यदर्शन और काश्मीर शैवदर्शन लगभग सहमत हैं। अन्तर केवल यह है कि सांख्य के अनुसार ये तत्त्व मूलप्रकृति का विकास हैं किन्तु काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार ये सभी तत्त्व परम शिव की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

षष्ठ अध्याय : शैवी साधना के उपाय

आचार्य अभिनवगुप्त तन्त्रालोक के तृतीय खण्ड में लिखते हैं कि जिस प्रकार भिन्न भिन्न रोगों के लिए एक औषधि काम नहीं करती, भिन्न भिन्न औषधियों की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार अलग अलग मनुष्यों के चित्तभेद के कारण शास्त्रभेद होता है। एक ही हेतु का आश्रय लेकर गुरु सफल नहीं हो सकता। इस कथन की व्याख्या विशाल दृष्टि से की जाए तो भाव यह है कि भारतीय दर्शन के सभी शास्त्रों की अपनी उपयोगिता है और काश्मीर शैवदर्शन की शैवी साधना के उपायों की दृष्टि से देखें तो अर्थ यह है कि साधना पथ पर चलने के इच्छुक लोगों के स्तर को ध्यान में रखते हुए अलग अलग उपाय बताए गए हैं। उत्कृष्ट कोटि के साधकों को तो उपाय के बिना ही शिवभाव का समावेश हो जाता है। उन्हें न तो किसी योग के अभ्यास का और न ही इच्छाशक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। गुरु ऐसे उत्कृष्ट कोटि के साधक को केवल इतना बता देता है कि तुम स्वयं अपने प्रकाश से प्रकाशमान हो, तुम स्वभाव से शुद्ध संवित् हो, परम परमेश्वर हो इसलिए तुम स्वयं अपनी परमेश्वरता को अनुभव करो। तुम्हें किसी उपाय की आवश्यकता नहीं है। गुरु के अनुग्रह से उस साधक को बिना किसी योग के अभ्यास के शिवभाव के समावेश की अनुभूति हो जाती है।

दूसरे प्रकार के साधकों के लिए शाम्भव उपाय या इच्छायोग का निर्देश किया गया है। आत्मदेव स्वयं अपनी इच्छा के प्रयोग से इस योग का अभ्यास करता है। इस में शरीर, मन, बुद्धि, प्राण के द्वारा कोई साधना नहीं की जाती, केवल चित्त की निश्चलता का अभ्यास होता है। चित्त के विकल्पों के शान्त हो जाने पर शान्त वायु में निष्कम्प जलते दीपक की तरह स्वयं अपने में ही ठहरे रहने का अभ्यास होता है। यह शाम्भव योग का प्रथम प्रकार है जिस से शिव– भाव का समावेश हो जाता है। दूसरे प्रकार में इच्छाशक्ति के साथ ज्ञानशक्ति की थोड़ी सी सहायता ली जाती है। साधक यह विमर्श करता है कि मेरी अपनी ही अनन्त शक्तियाँ मेरे ही शुद्ध प्रकाश में प्रतिबिम्बित हो कर सृष्टि के छत्तीस तत्त्वों के रूप में प्रकट हो रही हैं। उन

शक्तियों के आकार को अ से ले कर ह तक की वर्णमाला में देखने का अभ्यास करना होता है। ये वर्ण शिवकी शक्तियों के अभिव्यंजक माने जाते हैं। शाम्भव योग जब परिपक्व अवस्था में पहुँचता है तो अनुपाय हो जाता है।

जिन साधकों का चित्त अशुद्ध विकल्पों के प्रभाव के कारण शाम्भवोपाय में स्थिर न हो सके उनके लिए शैवदर्शन में शाक्त उपाय नामक ज्ञानयोग का उपदेश दिया गया है। अशुद्ध विकल्प ही बन्धन का कारण होते हैं। इस योग में शुद्ध विकल्पों के अभ्यास से अशुद्ध विकल्पों को नष्ट किया जाता है। यथार्थ ज्ञान को कई प्रकार से चित्त पर अंकित किया जाता है। ये प्रकार हैं—– याग, होम, जप, व्रत, योग, स्नान, पूजन और ध्यान। काश्मीर शैवदर्शन में इन शब्दों का प्रयोग सूक्ष्म अर्थों में हुआ है। सभी पदार्थ परमेश्वर में ही स्थित हैं, इस शुद्ध विकल्प को चित्त में ठहराने के लिए भावना द्वारा प्रत्येक भाव को परमेश्वर को अर्पित करना याग है। सभी पदार्थ परमेश्वर के तेज से ही बने हैं, इस विचार को पक्का करने को भावना द्वारा शिव की संवित् रूपी अग्नि में भावों को गला कर तद्रूप बना देना होम कहा गया है। परमशिव मेरा अपना स्वरूप है, इस भाव का पुनः पुनः अभ्यास करना जप कहलाता है। शरीर घट आदि सभी जड़ पदार्थों को भी परमेश्वररूप में देखना व्रत है। आत्मस्वरूप के विषय में बार बार चिन्तन करना योग है। मुझे न कोई बन्धन है न मोक्ष, ये तो मल हैं इस भाव के विमर्शन से अपने आप को निर्मल बनाना स्नान है। मैं पूजक, पूज्य, पूजा सब में रहता हूं, इसलिए मेरी पूजा हर समय होती है, इस विचार का विमर्शन पूजन है, इन्द्रियों द्वारा जिस किसी विषय का ग्रहण किया जाए उस उस विषय में शिवता देखना ध्यान कहलाता है।

जिन साधकों का चित्त मलों के अधिक जमाव के कारण ज्ञानयोग पर न टिकता हो उनके लिए काश्मीर शैवदर्शन में आणव उपाय का उपदेश किया गया है। इस उपाय को आणवयोग, क्रियायोग, क्रिया उपाय तथा भेद उपाय भी कहा गया है। आणव उपाय में चित्त को अपने से भिन्न वस्तुओं पर स्थिर करके भावना द्वारा उन वस्तुओं को आत्मपरमेश्वर के रूप में समझने का यत्न किया जाता है। आणव उपाय में संसार की वस्तुओं के प्रति धारणात्मक क्रिया का अंश प्रधान होता है और ज्ञान का

अंश थोड़ा तथा अप्रधान रहता है इसीलिए इसे क्रियायोग कहा जाता है। इस उपाय में चित्त के आलम्बन आत्मपरमेश्वर से भिन्न, साधक की बुद्धि, उसके प्राण, उसका देह और बाह्य जगत् बनते हैं अतः इसे भेदोपाय कहा जाता है। जब बुद्धि को आलम्बन बना कर धारणा का अभ्यास किया जाता है तो उसे ध्यान कहते हैं। जब प्राणों को आलम्बन बना कर प्राण, अपान आदि पर भावना द्वारा विश्रान्ति का अभ्यास किया जाता है तो साधक को निजानन्द, निरानन्द, ब्रह्मानन्द आदि छः आनन्दभूमिकाओं की अनुभूति होती है। देहधारणा में साधक अपने देह में तथा देह के नाडिचक्रों में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की भावना करता है और अन्त में इन्हें आत्मपरमेश्वर के रूप में अनुभव करने लगता है। ध्वनियोग भी इसी देहधारणा का अंग है जिस में साधक कानों को बन्द करके विचित्र नाद सुन सकता है। बाह्यालम्बनधारणा में शब्द के तीन प्रकार वर्ण या मन्त्र या पद और अर्थ के तीन प्रकार कला या तत्त्व या भुवन आलम्बन बनते हैं। इसी प्रकार लिंग, चित्र, पुस्तक, यन्त्र आदि भी बाह्य आलम्बन बनते हैं। साधक इस षडध्वधारणा में बाह्य ब्रह्माण्ड को शरीर में, शरीर को प्राण में प्राण को बुद्धि में, बुद्धि को शून्य में और शून्य को संवित् में भावना द्वारा विलीन करने का अभ्यास करके अपने संवित्स्वरूप को पहचान लेता है।

आणव उपाय से लेकर अनुपाय तक की इस सारी साधना को काश्मीर शैवदर्शन में योग कहा गया है। पातंजल योगदर्शन में चित्तवृत्तिनिरोध को ही योग कहा गया है परन्तु शैवदर्शन में जीव का शिव के साथ एकत्व प्राप्त कर लेना योग है। इस एकत्व को प्राप्त कराने वाले ये आणव उपाय आदि भी योग हैं। समावेश के सिद्ध हो जाने पर अर्थात् शिव के साथ एकत्व प्राप्त हो जाने पर इन उपायों का भी परित्याग हो जाता है। साधारण जनों की रुचि योगसाधना की अपेक्षा स्थूल और बाह्य क्रियाओं में अधिक होती है। उनके लिए द्रव्ययाग, द्रव्यहोम आदि क्रियाओं का भी प्रतिपादन तन्त्रालोक में किया गया है। शैवी साधना में ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। परिपूर्ण ज्ञान को पराभक्ति कहा है।

सप्तम अध्याय : काश्मीर शैवदर्शन की विशेषताएँ

काश्मीर शैवदर्शन का विकास ईसा की नवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों के बीच हुआ यद्यपि शैवागम पूर्वकाल में विद्यमान थे। नवीं शताब्दी तक अन्य भारतीय दर्शन पर्याप्त विकसित हो चुके थे और उन में परस्पर कुछ विरोध भी दिखाई देने लगा था। तब कश्मीर में शैवदर्शन का विकास हुआ जिसकी यह विशेषता है कि इस में सिद्धान्तों के समन्वय की सम्भावना दृष्टिगोचर होती है। आचार्य अभिनवगुप्त का यह मत तन्त्रालोक में अभिव्यक्त है कि जिस प्रकार भिन्न भिन्न रोगों के उपचार में भिन्न भिन्न औषधियों का प्रयोग करना होता है, एक ही औषधि से सब रोग दूर नहीं हो पाते उसी प्रकार मनुष्यों के चित्तभेद के कारण शास्त्रभेद होता है।

चित्तभेदान्मनुष्याणां शास्त्रभेदो वरानने।
व्याधिभेदाद्यथा भेदो भेषजानां महौजसाम्।।
यथैकं भेषजं ज्ञात्वा न सर्वत्र भिषज्यति।
तथैकं हेतुमालम्ब्य न सर्वत्र गुरुर्भवेत् ।।

(तन्त्रालोकविमर्शिनी खण्ड 3 पृश्ठ 55, काश्मीरशैवदर्शनबृहत्कोश पृश्ठ 674)

भुक्ति और मुक्ति का समन्वय : बहुत से भारतीय दर्शन प्रायः तप, त्याग और वैराग्य का ही उपदेश देते हैं। मनुष्य का एक मात्र उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है, इस मत का प्रतिपादन वे करते हैं। चार्वाक दर्शन भुक्ति के पक्ष में है पर वह मुक्ति की अवधारणा को पूर्णतया नकार देता है। काश्मीर शैवदर्शन में भुक्ति और मुक्ति दोनों का महत्त्व स्वीकार किया गया है।

यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय : अद्वैत वेदान्त केवल ब्रह्म को ही सत्य मानता है तथा अविद्या से दीखते संसार को मिथ्या कहता है। संसार को मिथ्या

मान लेने पर मानव सांसारिक प्रगति के विषय में सोच ही नहीं सकता। परिणाम स्वरूप समाज में निष्क्रियता आती है जो भौतिक विकास में बाधा बनती है। काश्मीर शैवदर्शन में शुद्ध संवित् परमशिव को सत्य माना गया है। सारा संसार उसके भीतर संवित् की ही अवस्था में सदा विद्यमान रहता है। उस रूप में भी संसार परमार्थतः सत्य है शिव के भीतर यह बीज रूप में विद्यमान है। परमशिव के स्वातन्त्र्य के विलास से उस बीजरूपता से इसका विकास संसाररूपता में होता है। शिव का स्वातन्त्र्य भी सत्य है और उस की स्वातन्त्र्यलीला की अभिव्यक्ति यह संसार भी सत्य है। न्याय और वैशेषिक दर्शनों में परमाणुओं की सत्ता को तो नित्य माना गया है परन्तु संसार को उत्पत्ति से पहले तथा विनाश के बाद असत्य माना गया है। सांख्य और योग दर्शनों की दृष्टि यथार्थवाद की दृष्टि है। उनमें जगत् को ईश्वर का रूप न मान कर उसे मूलप्रकृति का रूपपरिवर्तन मात्र माना गया है। काश्मीर शैव– दर्शन में जगत् को शिव का रूप मानते हुए उसकी व्यावहारिक सत्ता को भी स्वीकार किया है।

जीव की स्वतन्त्रता और कर्तृता : काश्मीर शैवदर्शन में परमशिव को परिपूर्ण स्वतन्त्र माना गया है। अपनी स्वातन्त्र्यलीला से जीवरूप में प्रकट होने पर वह अपनी परिपूर्ण स्वतन्त्रता तथा सर्वकर्तृता को भुला डालता है पर वह स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से लुप्त नहीं होती। जीवरूप में भी परिमित क्षेत्र में उसे परिमित स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। इसी प्रकार उसकी सर्वकर्तृता परिमित क्षेत्र में अल्पकर्तृता में परिवर्तित होती है। जितने क्षेत्र में उसे जानने और कर्म करने की स्वतन्त्रता है उतने क्षेत्र का वह ईश्वर है। उतने क्षेत्र में समुचित कर्तव्यकर्म करने का उसका उत्तरदायित्व भी बना रहता है। यह अवधारणा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए लाभप्रद होती है। व्यक्ति का लोकव्यवहार भी चलता रह सकता है तथा वह समाज के विकास में योगदान कर सकता है। साथ ही वह शैवी साधना करते हुए शिव के साथ एकत्व प्राप्ति के लिए यत्न कर सकता है।

वर्ण, जाति, लिंग के भेदों का अभाव : काश्मीर शैवदर्शन के अधिकार के विषय में वर्ण, जाति, लिंग का कोई भेद नहीं किया जाता। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा के

अनुसार यह शास्त्र सभी के उपकार के लिए तथा सभी को सरलता से सिद्धि प्राप्त कराने वाला है। किसी भी जाति का कोई भी स्त्री पुरुष, धनी निर्धन अपने चित्त की स्थिति और क्षमता के अनुसार शैवी साधना कर सकता है। शैवदर्शन की इसी उदार दृष्टि के कारण ही कश्मीर में शैवों और सूफियों की एक मिलीजुली परम्परा का विकास हुआ था। कश्मीरी साहित्य की प्रथम कवयित्री और साधिका लल्लद्यद तथा सूफी सन्त शेख नूरुद्दीन जिन्हें नुन्दरिशी भी कहा जाता है इसी परम्परा के हैं।

ॐ ॐ
ॐ ॐ
ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

लल्लद्यद अपने एक वाख (वाक्) में कहती हैं – "शिव छुय थलि थलि रोज़ाना मो ज़ान ह्योंद त् मुसल्मान।" अथार्त् शिव तो सर्वव्यापक हैं अतः हिन्दु और मुसलमान में कोई भेद नहीं क्योंकि दोनों ही उसी के स्वरूप हैं।

इस प्रकार काश्मीर शैवदर्शन के सिद्वान्त और उसकी विशेषताएँ आज के युग में भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी प्राचीन काल में थीं।

स्रोतग्रन्थ :-

तन्त्रालोक - अभिनवगुप्त, काश्मीरग्रन्थावली श्रीनगर 1918

प्रत्यभिज्ञाहृदय - क्षेमराज, काश्मीरग्रन्थावली श्रीनगर 1911

शिवसूत्र आगमशास्त्र, काश्मीरग्रन्थावली श्रीनगर 1916

काश्मीर शैवदर्शन - डा बलजिन्नाथ पण्डित, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान परिसर जम्मू 2005

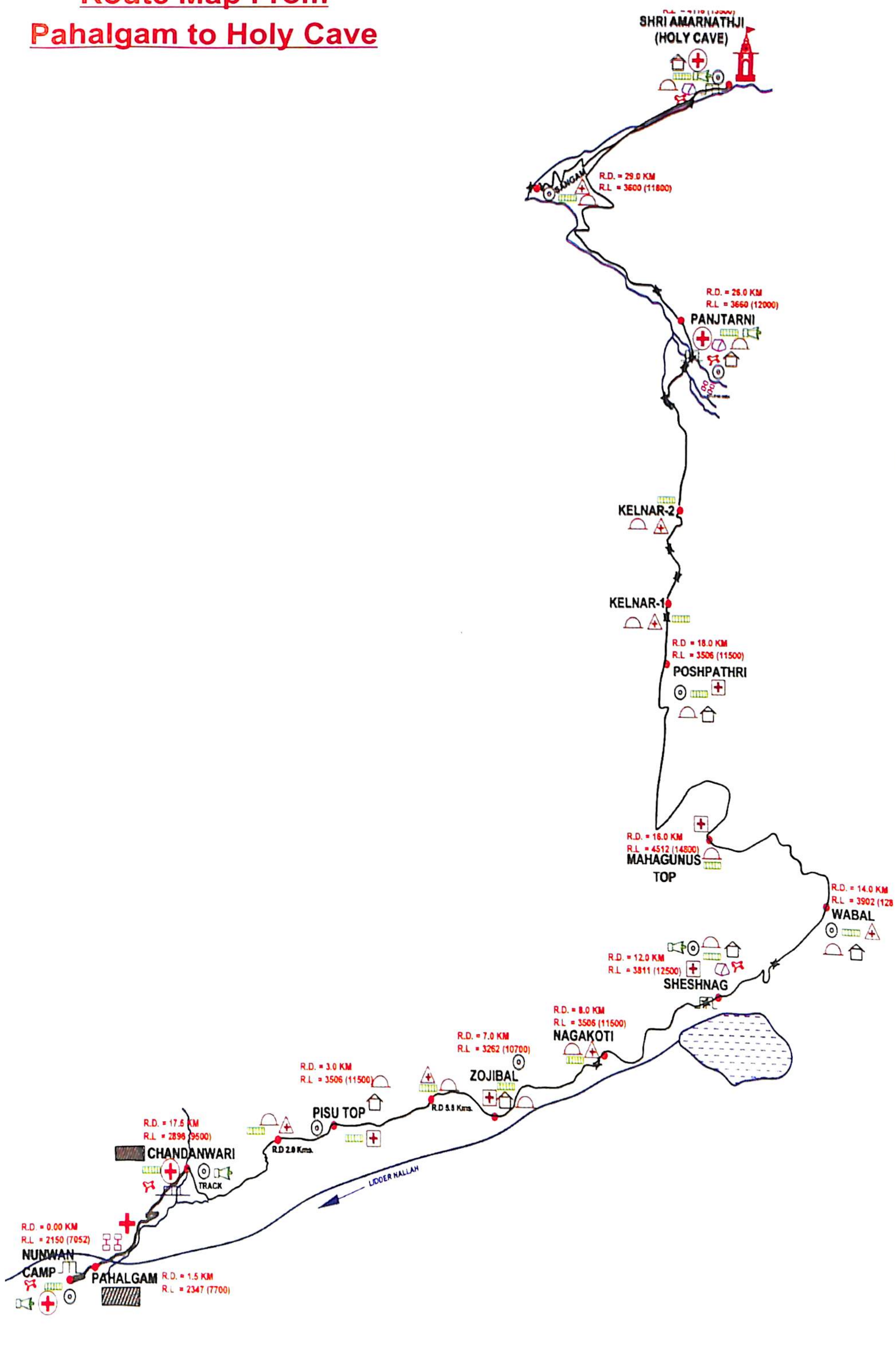
काश्मीरशैवदर्शनबृहत्कोश - डा बलजिन्नाथ पण्डित, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान परिसर जम्मू (प्रथम खण्ड तथा द्वितीय खण्ड), 2001, 2005।

वेदकुमारी घई

15/2, त्रिकुटानगर जम्मू

vedkghai@gmail.com

Route Map From Pahalgam to Holy Cave



For Any Queries please Contact :

(May - October)

K-Villa Sohravardi House Shivpora, Srinagar - 190004

Ph. No. 0194-2501679

Tel/Fax : 0194 - 2468250

(November - April)

Chaitanya Ashram, Talab Tillo, Jammu - 180002

Ph. No. : 0191-2555662

Tel/Fax : 0191 - 2503399

Website : www.shriamarnathjishrine.com

E-mail : sasbjk2001@gmail.com



मूल्य: **20/-**